जनसत्ता



# खतरे का संकेत

शुक्रवार को छोटे-से देश न्यूजीलैंड के खूबसूरत और क्रिकेट प्रेमियों के शहर क्राइस्ट चर्च की दो मस्जिदों पर हुए आतंकी हमले ने दुनिया को स्तब्ध कर दिया है। इस हमले में पचास लोग मारे गए और कई घायल हो गए। न्यूजीलैंड में ऐसा आतंकी हमला पहली बार हुआ है। माना जा रहा है कि यह हमला बांग्लादेशी टीम को निशाना बना कर किया गया था। जिस वक्त हमला हुआ, बांग्लादेशी क्रिकेट टीम के खिलाड़ी नमाज पढ़ने के लिए मस्जिद में पहुंचे थे। इस हमले का सबसे भयावह पहलू यह है कि हमलावर ने इस पूरी वारदात को कैमरे में भी कैद किया और फेसबुक पर लाइव दिखाया। हालांकि हमले को लेकर अभी चीजें काफी उलझी हुई हैं। जिन दोनों मस्जिदों पर हमला हुआ, उनमें पांच किलोमीटर का फासला है। इसलिए अभी हमलावरों की संख्या के बारे में पुख्ता जानकारी नहीं है। शुरुआती जांच में ये संकेत उभरे हैं कि आने वाले दिनों में शायद आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड भी ऐसे हमलों की जद में होंगे। इन देशों में नस्लीय हिंसा और चरमपंथ एक खतरनाक रूप ले रहा है।

न्यूजीलैंड में हुआ ताजा आतंकी हमला बता रहा है कि इस शांत देश में अब सब कुछ ठीक-ठाक नहीं है। यहां भी अंदर ही अंदर न सिर्फ मुसलिम समुदाय को लेकर, बल्कि गैर-श्वेतों के प्रति नफरत फैल चुकी है। मुसलमानों को यहां घुसपैठिया माना जाने लगा है। इस हमले को अंजाम देने वाले ने कहा भी है कि उसका मकसद बाहरी लोगों को देश से बाहर करना है। जिस तरह से यह हमला किया गया और हमलावर ने इसे फेसबुक पर दिखाया, उससे साफ है कि यह एक सुनियोजित हमला था और इसे अंजाम देने की योजना काफी पहले बन चुकी थी। ताज्जुब इस बात का है कि न्यूजीलैंड की सबसे चौकस पुलिस और खुफिया तंत्र को ऐसी साजिश की भनक तक नहीं लग पाई! हालांकि इसकी एक वजह यह भी है कि इस देश में अब तक कभी ऐसी कोई नस्लीय समस्या देखने-सुनने में नहीं आई थी।

आस्ट्रेलिया में पिछले कुछ सालों में नस्लीय हमलों की घटनाएं सामने आई हैं। इसके अलावा पूरे विश्व में आतंकवाद की वजह से मुसलिम समुदाय को लेकर जो धारणा बन गई है, वह भी कहीं न कहीं इस हमले के कारणों में निहित है। जैसा कि दावा किया जा रहा है कि इस घटना में हमलावर ने अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को गोरों का दबदबा कायम करने वाले प्रतीक के रूप में देखा और इसी से प्रेरित होकर इस नृशंस हत्याकांड को अंजाम दे डाला। न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया में ऐसे हालात बन गए हैं जैसे पगड़ी और दाढ़ी वाले व्यक्ति को अमेरिका सहित तमाम पश्चिमी देशों में आतंकवादी मान कर उस पर हमला कर देने की घटनाएं देखने को मिलीं। इस हमले के बाद अब न्यूजीलैंड सरकार के सामने बड़ी चुनौती तो यह है कि मुसलिम समुदाय और गैर-श्वेत समाज के भीतर जो असुरक्षा का भाव पैदा हुआ होगा, उसे कैसे दूर किया जाए। इस मसले पर जिन वर्गों में असंतोष पैदा हो रहा है, उसे कैसे रोका जाए। गौरतलब है कि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देश शिक्षा और रोजगार के नए ठिकानों के रूप में भी सामने आए हैं। बड़ी संख्या में विदेशी इन देशों में पढ़ाई और काम कर रहे हैं। ऐसे में इन देशों की सरकारों के सामने अलग-अलग वर्गों की अपेक्षाओं से निपटने की बड़ी चुनौती है। अगर नस्लीय अलगाव बढ़ा तो आने वाले दिनों में संकट गहरा सकता है। आतंकवाद चाहे नस्लीय-जातीय मुद्दे को लेकर हो या धार्मिक कट्टरपन को लेकर, उसे किसी भी रूप में जायज नहीं ठहराया जा सकता।

# हादसे का पुल

मुंबई में एक पैदल पार पुल के ढह जाने से छह लोगों की मौत और तीस से ज्यादा लोगों के घायल होने की घटना से फिर यही साबित हुआ है कि आम लोगों के रोजाना जोखिम से गुजरने को लेकर हमारी सरकारों और संबंधित महकमों के भीतर शायद संवेदनशीलता का घोर अभाव है। इतना तय है कि इस पुल में लंबे समय से क्षरण हो रहा होगा, जो गुरुवार को उस समय गिर गया, जब शाम को भारी भीड़ उस पर से गुजर रही थी। गनीमत यह रही कि जिस वक्त यह पुल गिरा, तब वहां यातायात संकेतक की वजह से वाहन रुके हुए थे। वरना मरने वालों की तादाद शायद काफी होती। सवाल है कि जिस पुल से होकर रोजाना हजारों लोग आवाजाही करते हैं, उसके पूरी तरह दुरुस्त होने को लेकर निश्चिंत होने की क्या वजह थी? हादसे के बाद यह तथ्य भी सामने आया कि छह महीने पहले बीएमसी यानी बृहन्नमुंबई नगर पालिका की एक ऑडिट में इस पुल को 'इस्तेमाल के लिए सुरक्षित' बताया गया था।

गौरतलब है कि करीब पैंतीस साल पुराने इस पुल की आखिरी बार मरम्मत 2010-11 में की गई थी। उसके बाद स्वच्छ भारत अभियान के तहत पुल के एक हिस्से की सजावट जरूर की गई थी, लेकिन मरम्मत का कोई भी काम नहीं हुआ। अब जब उस पुल के गिरने की वजह से छह लोगों की जान जा चुकी है, तीस से ज्यादा लोग घायल हुए तो इसकी जिम्मेदारी किस पर जानी चाहिए? क्या अब उस ऑडिट की गुणवत्ता या उसमें लापरवाही बरतने वालों को जांच के कठघरे में खड़ा किया जाएगा? विडंबना यह है कि न तो अपने यहां समय पर सावधानी बरतने, हादसे से बचने के लिए कमजोर हो चुके पुलों की मरम्मत करने या फिर उन्हें तोड़ कर नया बनाने को लेकर कोई सजगता दिखती है, न हादसा हो जाने पर ईमानदारी से अपनी गलती स्वीकार करने की प्रवृत्ति है। मुंबई में भी पुल के ढह जाने के बाद एक ओर रेलवे तो दूसरी ओर बीएमसी ने पुल की देखरेख और हादसे के लिए एक-दूसरे पर जिम्मेदारी थोपने की कोशिश की। क्या सचमुच इस तरह की व्यवस्था होती कि किसी निर्माण की देखरेख को लेकर दो या इससे ज्यादा विभागों में अस्पष्टता होती है? फिर बनने के बाद से अब तक उस पुल की मरम्मत या उसके ऑडिट का काम कौन-सा विभाग करता रहा था?

किसी भी हादसे का सबसे अहम सबक यह होना चाहिए कि भविष्य में वे सारे इंतजाम किए जाएं, हर मामले में अतिरिक्त सावधानी बरती जाए, जिससे वैसी घटना दोबारा नहीं हो। लेकिन हमारे यहां ऐसा लगता है कि पुलों की समय-समय पर ठीक से जांच करने और उनके सुरक्षित या असुरक्षित होने के सवाल को गंभीरता से नहीं लिया जाता है। उल्टे हादसे के बाद पर्याप्त संवेदनशीलता भी नहीं दर्शायी जाती है। मुंबई में पुल गिरने की घटना पर सत्ताधारी पार्टी की एक नेता ने यहां तक कह डाला कि पुल गिरने के लिए जिम्मेदार उस पर पैदल चलने वाले लोग हैं। सवाल है कि अलग-अलग महकमों और लोगों में इस स्तर की संवेदनहीनता कहां से आती है? यह कौन बताएगा कि पुल के खतरनाक हालत में और यहां तक कि ढह जाने की स्थिति में होने के बावजूद उसे 'इस्तेमाल के लिए सुरक्षित' होने का प्रमाण पत्र किस आधार पर जारी किया गया था, ऑडिट करने वालों की योग्यता क्या थी? या फिर क्या ऐसा भी होता है कि दस्तावेजी खानापूर्ति के मकसद से समय-समय पर इसी तरह की जांच की औपचारिकता पूरी कर दी जाती है और लोगों की जान को जोखिम की हालत में छोड़ दिया जाता है?

## कल्पमेधा

**सच्ची धार्मिकता कट्टरता से निष्प्राण हो जाती है। कट्टरता प्रत्येक धर्म के लिए श्मशान भूमि बनती है।**
**-काका कालेलकर**

# आतंक और पाकिस्तान

ब्रह्मदीप अलूने

**पाकिस्तान की दुनियाभर के आतंकी हमलों में संलिप्तता उजागर भी होती रही है। साल 2011 में भी अमेरिका ने गोपनीय दस्तावेजों में ग्वांतानामो बे के सात सौ कैदियों का हवाला देते हुए कई संदर्भों में इसका जिक्र किया था। इससे यह साबित हो गया था कि आइएसआइ अफगानिस्तान में अमेरिकी गठबंधन सेनाओं से लड़ रहे विद्रोहियों, यहां तक कि अलकायदा को भी समर्थन देती है।**

सामूहिक सुरक्षा का सिद्धांत यह दावा करता है कि शांति भंग करने वाले को सब राष्ट्र अपनी संगठित शक्ति से नियंत्रित करने में सहयोग करेंगे। यह तभी संभव हो सकता है जब सिद्ध हो जाता है कि इसका संबंध हर राष्ट्र के हितों से है। दरअसल, पाकिस्तान की आतंकवाद को प्रश्रय देने की नीति से समूची दुनिया प्रभावित है। उसकी सीमा से लगे देश आतंकी हमलों से पस्त हैं। पाकिस्तान के पूर्व में भारत स्थित है और सीमा से लगा हुआ जम्मू-कश्मीर राज्य लंबे समय से पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद से अशांत है। पाकिस्तान के दक्षिण-पश्चिम में ईरान है और उसकी सीमा से लगा समूचा बलूचिस्तान अलगाव और आतंक से बेहाल है। यह इलाका जुंडुल्लाह लड़ाकों का गढ़ है जो ईरान के सुन्नी अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व का दावा करता है और उनके लिए ईरान से अलग देश बनाए जाने के लिए अभियान चला रहा है। पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम की ओर अफगानिस्तान है। यहां सीमा से सटे कुनार और हेलमंद प्रांत में पाकिस्तान समर्थित तालिबान का दबदबा है और इससे समूचा अफगानिस्तान गृह युद्ध से झुलस रहा है। पाकिस्तान के उत्तर-पूर्व में चीन है और यहां का शिनचियांग प्रांत भी अशांत है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व में आने से वैश्विक शांति के प्रति सभी राष्ट्रों की जवाबदेही तो बढ़ी, लेकिन कुछ राष्ट्र लगातार आतंकवाद को पाल-पोसने की नीति पर चल निकले और आज ये वैश्विक शांति को भंग कर रहे हैं। पाकिस्तान इनमें अग्रणी है। शीत युद्ध के दौर में महाशक्तियों की प्रतिद्वंद्विता के फलस्वरूप पाकिस्तान ने जिहादी आतंक को बढ़ाने का जो सिलसिला शुरू किया था, वह आज भी बदस्तूर जारी है। इस समय पाकिस्तान की इस नीति से सबसे ज्यादा प्रभावित भारत, अफगानिस्तान और ईरान जैसे उसके पड़ोसी राष्ट्र हैं।

अस्सी के दशक की शुरुआत में अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रेगन के कार्यकाल में अमेरिकी खुफिया एजेंसी सीआइए के नेतृत्व में सोवियत संघ को अफगानिस्तान से बाहर निकालने का अभियान शुरू किया गया था। सीआइए ने इस अभियान में पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आइएसआइ और सऊदी अरब को सक्रिय साझीदार बनाया। तीनों ने मिलकर मुसलिम देशों से स्वयंसेवकों का चयन, प्रशिक्षण और उन्हें हथियार देकर अफगानिस्तान भेजना शुरू किया। इसे जिहाद का नाम दिया गया और समूचे मुसलिम जगत से कट्टरपंथी ताकतों को इस जिहाद में शामिल होने का आह्वान किया गया। यह जिहाद पूरे एक दशक तक चला और इस दौरान अमेरिका पूरी ताकत के साथ पाकिस्तान के पीछे खड़ा रहा। सोवियत रूस इस युद्ध में टिक नहीं पाया और उसे 1989 में अफगानिस्तान छोड़ना पड़ा। इस प्रकार अमेरिकी मदद से मुजाहिदीन ने एक अजेय समझी जाने वाली महाशक्ति को करारी शिकस्त दे दी थी। तत्कालीन समय में साम्यवाद को गहरी चोट देने की अमेरिकी नीति कारगर तो रही, लेकिन उसके बीज पूरी दुनिया में रक्तपात करेंगे इसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी।

अफगानिस्तान की राजनीतिक अस्थिरता कुछ समय तक अमेरिका, पाक और जिहादियों को खूब रास आई। तालिबान, उसामा बिन लादेन और इस्लामिक चरमपंथियों की उपजाऊ जमीन खामोश तो नहीं बैठ सकती थी। पाकिस्तान अफगानिस्तान को हथियाने का ख्वाब देखता रहा और उसने भारत से बदला लेने में भी जिहादियों का खूब इस्तेमाल किया। अब पाकिस्तान लश्कर-ए-तैयबा, हिजबुल मुजाहिदीन और जैश ए मोहम्मद जैसे आतंकी संगठनों के जरिये कश्मीर में अशांति फैला रहा है। पिछले महीने कश्मीर के पुलवामा में जैश के हमले में सीआरपीएफ के चालीस से ज्यादा जवान मारे गए थे। वहीं दक्षिण पूर्वी ईरान में रेवोल्यूशनरी गार्ड्स की बस पर आत्मघाती कार हमले में सत्ताईस सैनिकों की मौत हो गई थी। ये दोनों आत्मघाती हमले एक जैसे थे जिसमें विस्फोटकों से भरी कार को सुरक्षा बलों की बस से टकरा दिया गया था।

पाकिस्तान की दुनियाभर के आतंकी हमलों में संलिप्तता उजागर भी होती रही है। साल 2011 में भी अमेरिका ने गोपनीय दस्तावेजों में ग्वांतानामो बे के सात सौ कैदियों का हवाला देते हुए कई संदर्भों का इसका जिक्र किया था। इससे यह साबित हो गया था कि आइएसआइ अफगानिस्तान में अमेरिकी गठबंधन सेनाओं से लड़ रहे विद्रोहियों, यहां तक कि अलकायदा को भी समर्थन देती है। उसकी गतिविधियों में मदद करती है और संरक्षण भी प्रदान करती है। इन दस्तावेजों में आइएसआइ को आतंकवादी संगठन करार देते हुए माना है कि यह अलकायदा और तालिबान के समान ही एक

चुनौती है। इन सब घटनाओं के बाद भी चीन और अमेरिका के सामरिक समर्थन से पाकिस्तान को आतंकवादी राष्ट्र घोषित नहीं किया जा सका है।

ऐसे में पाकिस्तान के पड़ोसी देशों के सामने उसे रोकने की चुनौती बरकरार है। पाकिस्तान की भारत के साथ सबसे लंबी सीमा है। इसके बाद अफगानिस्तान और ईरान की सीमा है। ये तीनों राष्ट्र पाकिस्तान की सामरिक घेराबंदी कर पाकिस्तान पर दबाव डाल सकते हैं। पिछले साल सितंबर में भारत ने काबुल में पहली बार ईरान और अफगानिस्तान के साथ त्रिपक्षीय बैठक की थी। तीनों पक्षों ने चाबहार बंदरगाह परियोजना को लागू करने और आतंक रोधी सहयोग को बढ़ाने सहित कई अन्य मुद्दों पर चर्चा की। तीनों देशों ने चाबहार सहित आर्थिक सहयोग को मजबूत करने पर ध्यान केंद्रित किया। इसके साथ ही आतंकवाद के खिलाफ अभियान, नशीले पदार्थों के खिलाफ मुहिम पर सहयोग बढ़ाने और अफगानिस्तान द्वारा संचालित और स्वामित्व वाली शांति और सुलह प्रक्रिया के निरंतर समर्थन पर भी चर्चा हुई थी।

राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्धारण और उसकी सफलता के कुछ विशिष्ट आधार होते हैं जिनमें भू-राजनीतिक और भू-सामरिक नीति बेहद महत्त्वपूर्ण है। भारत ने पाकिस्तान से व्यापारिक संबंध बाधित करके उसके आर्थिक हितों को चोट पहुंचाई है। पाकिस्तान अपनी ऊर्जा जरूरतों के लिए ईरान पर निर्भर है और ईरान उससे व्यापारिक संबंध खत्म करके पाकिस्तान पर गहरा दबाव बना सकता है। अफगानिस्तान चारों ओर से मैदानी हिस्से से घिरा देश है, जिसकी पाकिस्तान पर बहुत अधिक निर्भरता है और अब तक भारत के साथ व्यापारिक संबंध के लिए पाकिस्तान से होकर जाना पड़ता था। पाकिस्तानी अधिकारी बिना नोटिस के अचानक सीमाएं बंद कर देते हैं। वे इसे अफगानिस्तान सरकार पर दबाव डालने के लिए हथियार के तौर पर इस्तेमाल करते रहे हैं। अब अफगानिस्तान को इससे राहत मिलने की उम्मीद बढ़ी है। साल 2017 में काबुल और दिल्ली के बीच हवाई रास्ते से माल ढुलाई के सीधे कॉरिडोर की शुरुआत हो गई है, वहीं चाबहार बंदरगाह से ईरान के रास्ते भारत-अफगानिस्तान का व्यापार शुरू हो गया है। भारत के अफगानिस्तान जाने के लिए ईरान ने एक पारगमन मार्ग उपलब्ध कराया है जिसे चाबहार-देलाराम जेरांग मार्ग कहते हैं।

अंतरराष्ट्रीय राजनीति और विदेश नीति के संदर्भ में भू-राजनीति का महत्त्व किसी भी और तत्त्व से अधिक है। भौगोलिक रूप से भारत, अफगानिस्तान और ईरान पर पाकिस्तान की निर्भरता है ही, इसके साथ ही ये तीनों राष्ट्र आर्थिक गोलबंदी के साथ पाकिस्तान की सामूहिक सामरिक मोर्चाबंदी भी कर लें तो पाकिस्तान पर दोहरा दबाव डाला जा सकता है। सामूहिक सुरक्षा के लिए यह भी माना जाता है कि यह व्यवस्था तभी प्रभावशील हो सकती है जब उसे क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त शक्ति हो। जाहिर है, भारत और ईरान सामरिक और आर्थिक रूप से भी मजबूत राष्ट्र हैं। पाकिस्तान के आतंकवाद से अभिशप्त दुनिया अभी तक उसे पूरी तरह रोकने में नाकाम रही है। इसके पड़ोसी देश शांति के लिए उत्पन्न खतरों से निपटने के लिए सामूहिक उपाय कर सकते हैं और यह सामूहिक सुरक्षा का कारगर उपाय भी हो सकता है। भारत-अफगानिस्तान और ईरान की सामूहिक मोर्चाबंदी से पाकिस्तान को पस्त किया जा सकता है और इस नीति को वृहत तौर पर आजमाने की जरूरत भी है।

# पढ़े-लिखे लोग

वर्षा

पढ़े-लिखे लोग, और उनमें भी वे अगर उच्च शिक्षा प्राप्त हों तो उन्हें और भी ज्यादा गर्व होता है अपने शिक्षित होने पर। जाहिर-सी बात है कि अपने पढ़े-लिखे होने पर खुश होना भी चाहिए, क्योंकि यह सब हासिल करना कोई आसान काम नहीं है। इसके पीछे दिन-रात की मेहनत, लगन और कठिन परिश्रम का हाथ होता है। जिस समय को काम की पढ़ाई नहीं कर पाने वाले लोगों ने किन्हीं वजहों से खेलकूद या फिर मौज-मस्ती में गुजारा होगा, वह समय अच्छी पढ़ाई करने वालों ने किताबों में माथापच्ची करते हुए गुजारा होगा। हालांकि यह हो सकता है कि उनके भीतर भी कहीं न कहीं मलाल रहता होगा मौजमस्ती नहीं कर पाने का। खैर, पढ़े-लिखे लोग अपने कठिन परिश्रम से वह सब हासिल कर लेते हैं, जिसकी उन्हें चाह होती है। वे ज्ञानीजन कहलाने लगते हैं या इस रूप में जाने जाते हैं। इसलिए समाज भी उन्हें सम्मान की नजरों से देखता है और उनसे उम्मीद करता है कि वे नियमों का पालन करेंगे, उनमें स्वार्थ नहीं होगा, उनकी सोच और आदर्श ऊंचे होंगे और उनका आचरण अनुकरणीय होगा।

लेकिन कई बार यह भी देखने में आता है कि पढ़ने-लिखने का चरित्र और सोच पर कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। ऐसा तब महसूस होता है, जब कुछ पढ़े-लिखे लोग नियमों को सिर्फ अपनी स्वार्थ की पूर्ति के लिए मानने से इनकार कर देते हैं। पढ़े-लिखे लोग आमतौर पर कम पढ़े-लिखे और अनपढ़ लोगों को हेय दृष्टि से देखते हैं, गंवार और अनपढ़ कह कर उनका मखौल भी उड़ाते हैं। कहीं किसी लाइन में खड़े होकर अपना काम कराना या अपनी बारी का इंतजार करना अपनी बेइज्जती समझते हैं। ऐसे लोग हर जगह खुद को विशेष तवज्जो दिए जाने की ख्वाहिश रखते हैं। इनकी दुनिया मैं, मैं और सिर्फ मैं तक सीमित रह जाती है। खुद से आगे ये कुछ नहीं सोच पाते।

**दुनिया मेरे आगे**

ऐसे दृश्य आम हैं जिनमें बड़ी-बड़ी और लक्जरी गाड़ियों में बैठे सूट-बूट पहने लोग खिड़की का शीशा नीचे करके कचरा फेंकते हुए जरा भी नहीं झिझकते। अगर कोई इस पर सवाल उठाए तो उल्टे उस पर धौंस भी जमाने लगते हैं। खुद को सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा मानने वाले कुछ लोग कम पढ़े-लिखे या अनपढ़ लोगों से खुद को श्रेष्ठ मानते हैं और उन्हें अपने पास तक नहीं फटकने देते, लेकिन खास नस्ल के कुत्ते पालना उनका शौक होता है और इसके लिए भी वे खुद को बाकी के मुकाबले श्रेष्ठ वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में पेश करते हैं। दूसरी ओर, सुबह-शाम उन कुत्तों को लेकर बाहर निकलते हैं तो पार्क या शहर की गलियों को गंदा कराते हुए नहीं हिचकते हैं।

इनमें से कुछ लोग अपने घर के सामने पार्किंग की जगह को पार्क या फूल लगाए जाने की जगह में तब्दील कर देते हैं और फिर अपनी कई गाड़ियों को दूसरे लोगों के पार्किंग क्षेत्र में खड़ी कर आते हैं। अगर कोई विरोध करे तो वे उन पर गुर्राते हैं। इन पर कोई फर्क नहीं पड़ता है जब इनका स्वार्थपूर्ण व्यवहार दूसरों के लिए तकलीफ का सबब बन जाता है। नियमों का हवाला देने पर ये उसकी धज्जियां उड़ा कर मानने से इनकार कर देते हैं। सड़क पर कहीं कोई दुर्घटना हो जाए तो कई बार ऐसे लोग अनदेखा करके गुजर जाते हैं, जबकि वहां से गुजर रहे कुछ वैसे लोग सब कुछ भूल कर मदद के लिए दौड़ पड़ते हैं, जिन्हें कम पढ़ा या अनपढ़ माना जाता है। पीड़ितों की सहायता करने से पहले वे एक पल के लिए नहीं सोचते कि वे किसी झमेले फंस सकते हैं। ऐसा इसलिए कि उनके भीतर मानवता होती है।

अक्सर मन में ये सवाल भी उठते हैं कि क्या उच्च शिक्षा और किसी जाति विशेष में जन्म लेना ही कुलीनता और सभ्य होने का पैमाना है? मैं ऐसा नहीं मानती। अगर किसी की शिक्षा उसे स्वार्थी होने से नहीं बचाती और नियम-कायदों का पालन करना नहीं सिखाती, उसके भीतर मानवीय गुणों का विकास नहीं करती है तो उस शिक्षित से भले वे अनपढ़ कहे जाने वाले लोग हैं जो स्वार्थहीन होते हैं, जिनकी सोच संकीर्ण नहीं होती है, उनके भीतर अहंकार नहीं होता। अगर किसी व्यक्ति की जाति उसकी सोच के दायरे को छोटा कर देती है तो वह व्यक्ति कमतर माना जाना चाहिए।

पढ़े-लिखे होने का एक सबूत यह होना चाहिए कि हमारी बोलचाल की भाषा शालीन और सभ्य हो। मगर कई बार पढ़े-लिखे कुछ लोगों की भाषा सुन कर कानों पर हाथ बरबस ही चला जाता है और आंखों में हैरानी के भाव उमड़ आते हैं। इस तरह के पढ़े-लिखे लोगों के बारे में खयाल आता है तो कई बार सोचती हूं कि इन्होंने दुनिया को कुछ दिया होगा, लेकिन उससे बहुत कुछ ले भी लिया है। दरअसल, इंसान की शिक्षा उसके व्यवहार का आईना होती है। वे डिग्रियां बेकार हैं जो तहजीब नहीं सिखा सकतीं। वे डिग्रियां सिर्फ हमें पैसा दे सकती हैं, हमें सभ्य इंसान नहीं बना सकतीं।

# किसानों की खातिर

कृषि देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है लेकिन बीते कुछ वर्षों से अंतरराष्ट्रीय बाजार में कृषि उत्पादों की गिरती कीमत और 2017-18 से खाद्येतर क्षेत्रों के सापेक्ष भारत में खाद्य मुद्रास्फीति में गिरावट के चलते देश की कृषि आमदनी कम हुई है। बीती एक फरवरी को केंद्र सरकार द्वारा पेश किए गए अंतरिम बजट में कई अहम घोषणाएं की गईं। इनमें किसानों के लिए प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना एक महत्त्वपूर्ण घोषणा थी जिसके अंतर्गत दो हेक्टेयर तक जोत वाले छोटे और सीमांत किसानों को प्रति वर्ष 6000 रुपए की सहायता दी जाएगी। यह रकम 2000 रुपए की तीन किस्तों में लाभार्थी के खाते में सीधे डाली जाएगी। इस योजना में प्रति वर्ष 75000 करोड़ रुपए खर्च होने का अमुमान है जो केंद्र सरकार द्वारा वहन किया जाएगा।

किसानों के लिए वित्तीय मदद बेशक एक अच्छी पहल है, लेकिन क्या 6000 रुपए वार्षिक यानी प्रतिमाह 500 रुपए उनकी जरूरतों के लिए काफी हैं? आजकल किसानों को बीज, यूरिया, कीटनाशक या जैविक खाद आदि खरीदने में इस वित्तीय मदद से भी अधिक राशि खर्च करनी पड़ती है। ऐसे में इस वित्तीय मदद से किसानों का कितना भला होगा?

सरकार के अनुसार इस योजना से लगभग बारह करोड़ किसानों के लाभान्वित होने की उम्मीद है। इसका लाभ सिर्फ उन्हीं किसानों को मिलेगा जिनका नाम प्रधानमंत्री किसान योजना की सूची में आया होगा, यानी जो किसान भूमिहीन होंगे उन्हें इस योजना का कोई लाभ नहीं होने वाला। ऐसे में दूसरे के खेतों में काम करके अपनी जीविका चलाने वाले किसान या फिर अपने खेतों को साहूकारों के पास गिरवी रखने वाले किसान, जिनका कर्ज चुकाने तक उस खेत पर अपना कोई अधिकार नहीं होता, उन्हें भी क्या इस योजना का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए?

इस सबके मद्देनजर जरूरी है कि सरकार कोई ठोस रणनीति बनाकर देश की कृषि की समस्या का स्थायी समाधान करे ताकि किसानों को वित्तीय सहायता या सरकार के कर्जमाफी जैसे चुनावी जुमलों पर निर्भर न रहना पड़े।

● *शुभम शर्मा, एमसीयू, नोएडा*

## आतंक की ढाल

चीन ने अपनी चिरपरिचित पैंतरेबाजी से कुख्यात

**किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश**

**आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com**

## मुनाफे की शिक्षा

यह बहुत अफसोसनाक है कि हमारे देश में सरकारी स्कूलों को व्यवस्थित तरीके से खत्म करने का काम सरकारें ही कर रही हैं। आज भारत के किसी भी राज्य में सरकारी स्कूलों की हालत अच्छी नहीं है। वैसे तो इन स्कूलों को खत्म करने की योजना 1990 से पहले ही शुरू हो गई थी लेकिन 1990 के दशक की नव उदारवादी नीतियां लागू होने के बाद देश में पूंजीपति वर्ग की नुमाइंदगी करने वाली किसी भी सरकार के लिए इस मुहिम को आगे बढ़ाना और भी ज्यादा आसान हो गया। तब पूंजी के लिए बाजार खोल दिया गया और शिक्षा को भी एक बाजारू माल बनाने की पहल कदमी शुरू हो गई। सरकारी स्कूलों को नियोजित तरीके से खत्म करने के साथ-साथ प्राइवेट स्कूलों को बढ़ावा दिया जाने लगा। इससे स्कूल शिक्षा केंद्र न रह कर 'बिजनेस' बनते चले गए। पूंजीपति वर्ग ने अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में भी पूंजी लगानी शुरू कर दी जिससे जल्दी ही पूरे देश में निजी स्कूलों की बाढ़-सी आ गई।

एक रिपोर्ट के अनुसार 2010 से 2016 तक भारत के 20 राज्यों के सरकारी स्कूलों में होने वाले दाखिलों में 1.3 करोड़ की गिरावट दर्ज की गई। दूसरी तरफ निजी स्कूलों में इसी दौरान 1.75 करोड़ नए छात्रों ने दाखिला लिया। यह आंकड़ा इस बात की पुष्टि करता है कि सरकारी स्कूलों के ढांचे में सुधार न करने की कोशिश के चलते उनकी लोकप्रियता में लगातार गिरावट आ रही है। नतीजतन, आज एक मजदूर भी अपने बच्चे को प्राइवेट स्कूल में भेजने पर मजबूर है। सरकारी स्कूलों के ढांचे को इस बात से भी जांचा परखा जा सकता है कि 2016 की संसद की और 11 जनवरी, 2019 की जनसत्ता की एक रिपोर्ट के मुताबिक देश में करीब एक लाख से ज्यादा सरकारी स्कूल ऐसे हैं जहां केवल एक अध्यापक स्कूल चला रहा है। इसमें पहले नंबर पर मध्यप्रदेश है जहां ऐसे स्कूलों की संख्या 17,874 है और उत्तर प्रदेश 17,602 संख्या के साथ दूसरे नंबर पर है। आज भारत में सरकारी स्कूलों के मुकाबले निजी स्कूलों की संख्या 450 गुना तेजी से बढ़ रही है। शिक्षा को धंधा बनाने का यह सिलसिला आखिर कहां जाकर थमेगा?

● *प्रवीन, कुरुक्षेत्र, हरियाणा*

## जमीनी हकीकत

स्वच्छ भारत अभियान के ताजा आंकड़ों के अनुसार स्वच्छता का दायरा करीब 90 फीसद तक पहुंच चुका है। लेकिन जमीनी हकीकत तो इस आंकड़े से एकदम जुदा है। सिर्फ शौचालय बनवाने और कुछ विज्ञापन जारी कर देने मात्र से इस बड़ी समस्या को खत्म करना मुश्किल है। हालत यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में तमाम शौचालय अब स्टोर रूम बनने लगे हैं और लोग खुले में शौच के अपने पुराने ढर्रे पर आना शुरू हो गए हैं। इसके मद्देनजर विभिन्न जागरूकता कार्यक्रमों के जरिए पूर्वस्थिति कायम होने से रोकना होगा। स्वच्छता अभियान की सफलता के लिए आमजन की भागीदारी अब अपरिहार्य हो चली है।

● *सुमित यादव, कालपी, उत्तर प्रदेश*